श्रीः

गुरुकुलीय शिक्षा, उपनयन संस्कार, नित्य सन्ध्योपासन एवं ब्रह्मयज्ञ

— अपनी शाखा के गृह्यसूत्रअनुसार उपनयन संस्कार होता है, जो द्विजातियों का मुख्य संस्कार है।

— स्वशाखासूत्रोक्त सन्ध्योपासन तथा ब्रह्मयज्ञ का अनुष्ठान करके ही अन्य धर्मकर्म करने का शास्त्रनिर्देश है।

— गुरुपरम्परानुसार यथाशक्ति वेद का अध्ययन करना ब्राह्मणों का कर्तव्य तथा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पुण्यकार्य है।

— शास्त्रोक्त आचार का पालन वर्णाश्रमधर्मियों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य है।

—सनातनधर्म के अनुयायी अन्य वर्ण तथा जाति के लोग भी अपनी शक्ति के अनुसार आचारयुक्त ब्राह्मणों को तथा वेदाध्यायी ब्राह्मणों को सहायता करके पुण्यलाभ तथा आत्मकल्याण कर सकते हैं।

—इस चेतना को समाज में प्रसारित करने के कार्य में गुरुकुल तथा गुरुकुल के स्नातकों का महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है

उपनयन (व्रतबन्ध)

उपनयन (व्रतबन्ध) का महत्त्व सभी ब्राह्मणों को समझना आवश्यक है। व्रतबन्ध का शास्त्रोक्त मुख्य नाम उपनयन है। उपनयन संस्कार सम्पन्न करके आवश्यक व्रतों का परिपालन करते हुए वेद-वेदाङ्गादि शास्त्र पढना चाहिए यह शास्त्र का निर्देश है। इससे धर्म-मोक्षसाधना के लिए वैदिक ज्ञान प्राप्त होता है। उपनयन में आचार्य का विशेष स्थान होता है। आचार्य की परिभाषा बृहस्पतिस्मृतिअनुसार यह है—

आचिनोति च शास्त्राणि आचारे स्थापयत्यपि।
स्वयमाचरते यस्तु तमाचार्यं प्रचक्षते॥

(द्रष्टव्य— निरुक्त १।२।१; ब्रह्माण्डपुराण २।३२।३२)।

अर्थात् वेद तथा वेदाङ्ग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दश्शास्त्र, ज्योतिष), धर्ममीमांसाशास्त्र, ब्रह्ममीमांसाशास्त्र, अनुस्मृति, पुराण, इतिहास इन शास्त्रों का अध्ययन-अध्यापन के द्वारा जो रक्षा करता है, जो शिखा-सूत्र-स्नान-सन्ध्योपासन-भक्ष्याऽभक्ष्य-पेयाऽपेय-स्पृश्याऽस्पृश्य-गन्तव्याऽगन्तव्य-कार्याऽकार्य इत्यादि विषयों में इन आचारों का महत्त्व समझाता है, जो सुसंस्कारद्वारा इन शास्त्रीय नियमों का आचरण करने का अभ्यास कराकर शिष्य को शास्त्रोक्त आचार में स्थिर करता है, जो स्वयं भी उक्त आचारों का मन-वचन-कर्म से पालन करता है, उसी को आचार्य कहते हैं।

उक्त प्रकार के आचार्य से उपनयन होने पर ही वास्तव में उपनयन संस्कार अर्थात् व्रतबन्ध सार्थक और सफल होता है। शिष्य में सुसंस्कार रहता है। शिष्य द्विज बनता है। अन्धकार से ज्योति के ओर आगे बढता है। उपनयन अर्थात् व्रतबन्ध संस्कार होने के बाद मनुष्य में धर्म-मोक्षदृष्टि उदित होनी चाहिए, धर्म-मोक्ष-परक सदाचारी प्रवृत्ति विकसित होना चाहिए, धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष चारों पुरुषार्थों के प्रति सन्तुलित दृष्टिकोण वाली जीवनयात्रा के प्रति आस्था जगना चाहिए। नहीं तो वह उपनयन अर्थात् व्रतबन्ध निरर्थक वा असफल हुआ माना जाता है। धर्मसूत्रकार आपस्तम्बमुनि ने **"तमसो वा एष तमः प्रविशति यमविद्वानुपनयते यश्चाऽविद्वान्"** इस वेदवचन को दिखाकर (१।१।१।११) द्विजवर्ग को सावधान कराया है।

यदि उपनयन (व्रतबन्ध) के उक्त मर्म के प्रति ध्यान न देकर विधिहीन श्रद्धाहीन व्रतबन्ध हुआ हो तो कुलीन वैदिक ब्राह्मणों को विधिपूर्वक पुनः व्रतबन्ध कराना चाहिए—

हठान् मोहाच् छलान् मौर्ख्यात् कृतोपनयनं वृथा।
पुनःकरणमाप्नोति यथावन् नाऽत्र संशयः॥

—लौगाक्षिस्मृति, स्मृतिसन्दर्भ, षष्ठ भाग, पृ.२३७।

यह व्यक्ति शास्त्रीय रूप में उपनयन के लिए योग्य कुल का योग्य व्यक्ति है यह बात जानकर ही उपनयन, मन्त्रदान और वेद पढाने का कार्य करना चाहिए। न जानकर उपनयनादि कराने का शास्त्र में निषेध किया गया है। जैसे—

नाऽपरीक्षितं याजयेत्, नाऽध्यापयेत्, नोपनयेत्। (विष्णुधर्मसूत्र २९।४,५,६)।

अनेक जन का (सामूहिक) व्रतबन्ध कराना भी शास्त्र में निषिद्ध है—

श्रद्दधानस्य भोक्तव्यं चोरस्याऽपि विशेषतः।
न त्वेव बहुयाज्यस्य यश्चोपनयते बहून्॥ (वासिष्ठ धर्मशास्त्र १४।१७)

अतः ब्राह्मणों को अपने घर में अथवा तीर्थ में श्रद्धापूर्वक अपने गृह्यसूत्रअनुसार योग्य सदाचारनिष्ठ सुपरिचित शुद्धकुलीन गृहस्थ ब्राह्मण आचार्यद्वारा उपनयन सम्पन्न कराना शास्त्रीय कार्य है, इसके विपरीत कार्य अशास्त्रीय है।

वैदिक सन्ध्योपासन तथा ब्रह्मयज्ञ

सन्ध्योपासन का माहात्म्य और अत्यावश्यकता दिखाकर वैदिक शास्त्रों ने इस विषय में धार्मिक सज्जनों को सचेत किया है।

अन्य धर्मकर्म करने में असमर्थ होने पर भी श्रद्धा से सायंकाल और प्रातःकाल विधिपूर्वक सम्यक् सन्ध्योपासन मात्र करने पर भी ब्राह्मण लोग संसारसागर को पार करते हैं यह लौगाक्षिस्मृति की उक्ति है (स्मृतिसन्दर्भ षष्ठ भाग, पृ.२८५)। यथा—

ब्राह्मणः सर्वयत्नेन सायम्प्रातः समाहितः।
सन्ध्यामात्रपरो भूयात् तावन्मात्रात् तरिष्यति॥

साँझ-सबेरे नित्य सन्ध्योपासन न करनेवाला व्यक्ति द्विजातिकर्म से सर्वथा बहिष्कार्य हो जाता है यह बात मनुस्मृति में (२।१०३) और ब्रह्मवैवर्तपुराण में (प्रकृतिखण्ड २३।२६, कृष्णजन्मखण्ड ७५।५०) प्रतिपादित है। यथा—

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः॥

ब्राह्मण से सन्ध्योपासन ही छोडकर किए गए धर्मकर्म भी पापकर्म हो जाते हैं यह बात भारद्वाजस्मृति में बताई गई है (६।१६१, स्मृतिसन्दर्भ, पञ्चम भाग, पृ.४०२२)। जैसे—

सन्ध्योपास्तिं विना विप्रः पुण्यान्यन्यानि चाऽऽचरेत्।
यस् तस्य तानि पापानि भवन्त्येव न संशयः॥

सन्ध्योपासन छोडकर अन्य धर्मकार्य करनेवाला ब्राह्मण तो दश हजार नरकों में पडता है यह लघुव्यासस्मृति की (१।२९) और मूलगरुडपुराण की (१।५०।२३) उक्ति है। जैसे—

योऽन्यतः कुरुते यत्नं धर्मकार्ये द्विजोत्तमः।
विहाय सन्ध्याप्रणतिं स याति नरकाऽयुतम्॥

हरि की भक्ति में अथवा ध्यान में लगे हुए भी अपनेअपने आश्रम के सन्ध्योपासनादि आचार से भ्रष्ट हुए लोग तो पतित ही कहे जाते हैं ऐसा बृहन्नारदीयपुराण का कथन है (१।४।२४)। जैसे–

हरिभक्तिपरो वाऽपि हरिध्यानपरोऽपि वा।
भ्रष्टो यः स्वाश्रमाचारात् पतितः सोऽभिधीयते॥

उक्त शास्त्रव्यवस्था को ध्यान में रखकर वर्तमान काल की परिस्थिति में साधारण संस्कृतशिक्षाप्राप्त अथवा अन्य शिक्षा प्राप्त ब्राह्मणों को भी अधोलिखित मार्मिक उक्ति का वारंवार विचार करके सन्ध्योपासन के माहात्म्य को समझकर कार्य करना चाहिए–

"वृद्धिं गच्छतु पाठ्यपुस्तककला सा योग्यता लीयते
प्रत्याशं प्रसरन्तु धर्मकथकाः सन्ध्याऽपि बन्ध्यायते।
वाचा शंसतु देशधाम जनता नैवाऽऽत्मना चेष्टते
क्षुभ्यन् वेदवृषोऽपयाति शतधा किं सौष्ठवं मन्महे॥"

(भावार्थ– नाना प्रकार के पाठ्यपुस्तकों को प्रस्तुत करने की कला बढे, उससे क्या होगा? शास्त्रों का ज्ञान और तदनुकूल चरित्र तो लुप्त होता जारहा है; पेसेव्रर धर्मकथक लोग दशों दिशाओं में फैलें, उससे क्या होगा? जिस सन्ध्योपासन न करने पर किसी भी धर्मकर्म करने का अधिकार ही नहीं होता है, उस सन्ध्योपासन को भी द्विज लोग छोड रहे हैं; कोई वाणी से देश का गौरवगान करे, उससे क्या होगा? कोई भी हृदय से तो तदनुकूल प्रयास नहीं करता है; इस परिस्थिति में क्षुब्ध होकर वेदप्रतिपादित धर्म शतधा दूर भाग रहा है, किस को लेकर अच्छा मानें?)। गुरुकुल में अध्ययन के अवसर से रहित ब्राह्मणों को भी सन्ध्योपासन का अनुष्ठान करना चाहिए।

इसी प्रकार उपनीत ब्रह्मचारी, स्नातक, गृहस्थ सभी ब्राह्मणों को प्रतिदिन ब्रह्मयज्ञ (स्वाध्यायाध्ययन अर्थात् नित्य वेदपाठ) करने का निर्देश भी शास्त्रों में हैं **(ऋग्वेदसंहिता १०।७१।६, ऐतरेय्यारण्यक ३।२।४, तैत्तिरीयारण्यक २।१५, ७।१, तैत्तिरीय उपनिषद् १।११।१, काठक-स्वाध्यायब्राह्मण, बौधायनधर्मसूत्र २।६।८ मा.शतपथब्राह्मण ११।५।६।३, छान्दोग्योपनिषद् ८।१५।१, गौतमधर्मसूत्र १।५।४,५)**। वेदाध्ययन, सन्ध्योपासन तथा ब्रह्मयज्ञ सबसे बडा धर्म है। इस चेतना को ब्राह्मणसमाज में प्रसारित करना तथा स्थापित करना धर्मरक्षा में महत्त्वपूर्ण कार्य है। इस कार्य में गुरुकुल तथा गुरुकुल के स्नातकों का महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

शास्त्रोक्त धर्म की चेतना वृद्धि हो एतदर्थ ही विद्वान् शिवराज आचार्य कौण्डिन्न्यायन द्वारा रचित माद्ध्यन्दिनीय–वाजसनेयि–शुक्लयजुर्वेदशाखा का सुपरिष्कृत **सन्ध्योपासनपद्धति** तथा **ब्रह्मयज्ञपद्धति** प्रकाशित किये गये हैं। अन्य शाखा की अथवा मिश्रित पद्धतियाँ माध्यन्दिनीय शुक्लयजुर्वेद के अध्येताओं के लिए उचित नहीं हैं। श्रुति–स्मृति–पुराण–वचन–प्रमाणों के आधार पर अनेक विषयों को स्पष्ट करनेवाली संस्कृत भूमिका और भाषानुवाद भी समाविष्ट करके स्वशाखासूत्र के पूर्ण अनुकूल रूप में उक्त पद्धतियाँ प्रकाशित की गई हैं। अतः इनका अध्ययन करके शास्त्रधर्म–विधान को प्रचारित करने के लिए विशेषतः

वेदादिशास्त्र–धर्मपरम्परा के प्रमुख वाहक सभी सज्जन विद्वान् ब्राह्मणों को सादर अनुरोध है। इसी प्रकार अन्य वेदशाखा के विद्वान् ब्राह्मणों को अपनी–अपनी शाखा के मूल ग्रन्थों के आधार पर स्वशाखा की सन्ध्योपासनपद्धति एवं ब्रह्मयज्ञपद्धति अबतक न बनी हो तो बनाकर प्रचारित करना चाहिए। सन्ध्योपासनविधि विविधशाखाओं के ग्रन्थों में भिन्नभिन्न रूपमें विहित है **(आश्वलायन-गृह्यसूत्र ३।७।३–४, कौषीतकि-गृह्यसूत्र २।६।३–४ तैत्तिरीयारण्यक २।२,१०।२५–३१, बौधायन-धर्मसूत्र २।७।१–१३, मानव-मैत्रायणीय-गृह्यसूत्र १।२।१–५ कात्यायन-त्रिकण्डिक-स्नानसूत्र क.२, गोभिल–गृह्यसूत्र-छन्दोगसन्ध्यापरिशिष्ट, गौतमधर्मसूत्र १।२।१७, अथर्ववेद-परिशिष्ट-४१)**।

गुरुकुलीय वैदिक शिक्षा

वैदिक शिक्षा-पद्धति वैदिक परम्परा अनुरूप का वेदवेदाङ्गों का शास्त्रीय पठनपाठन-पद्धति है। इसमें गुरु का और शिष्य का शाास्त्रीय सम्बन्ध होता है और उसअनुरूप की अन्य व्यवस्थाएँ होती हैं। इस पठनपाठन में अन्य प्रकार का नियन्त्रण और व्यवस्था का प्रभाव मान्य नहीं होता है। कौटलीय अर्थशास्त्र में उल्लिखित **"विद्यानां तु यथास्वम् आचार्यप्रामाण्याद् विनयो नियमश् च"** (१।५) यह सिद्धान्त ही मूल वैदिक शिक्षापद्धति में लागू होता है। ऐसी शिक्षा-पद्धति से ही वैदिक धार्मिक परम्परा की सुरक्षा होती है। वेद-वेदाङ्गों का शास्त्रीय-गुरुकुल-पद्धति के अध्ययन-अध्यापन के विना वैदिक धार्मिक क्रियाकलाप का सञ्चालन तथा वैदिक धर्म का पालन न हो सकने से इस पद्धति की शास्त्रीय मान्यता अनुरूप की व्यवस्था अत्यावश्यक होती है। अतः शास्त्रीय मूल परम्परा की मान्यता से विपरीत गुरुकुल को शासकीय नियन्त्रण और व्यवस्था में सञ्चालित करना उचित नहीं है। इस विषय में सञ्चालकों को विचार करना चाहिए। गुरुकुल मूलतः गुरु का व्यक्तिगत गृह (घर) ही है यह बात सम्बद्ध सभी को समझना आवश्यक है। सनातन धर्म के संरक्षण के लिए शास्त्रसम्मत गुरुकुल की अत्यावश्यकता होने से आस्तिक सज्जनों का इस ओर ध्यान जाना आवश्यक है।

वेद की रक्षा करनेवाली मूल वैदिक शिक्षा का स्वरूप

वेद का शास्त्रीय शिक्षा में गुरु होने के लिए गुरुमुख से वेद का जिसने अध्ययन किया हो वैसा सदाचारी कुलीन ब्राह्मण होना चाहिए। संभव हो तो गृह्य अग्नि का आधान करनेवाला ब्राह्मण भी होना चाहिए। ऐसा संभव न हो तो सुस्थापित लौकिक अग्नि में ही अध्यायोपाकर्म सम्पन्न करके विधिपूर्वक वेद पढाया जा सकता है। आपद्धर्म के रूप में अध्यायोपाकर्म के विना वेद का अध्यापन करने का प्रचलन भी है। संभव हो तो गृह्यसूत्रोक्त अध्यायोपाकर्म करके ही वेद का अध्यापन करना उचित है। वेद अध्ययन करनेवाला वटु भी सदाचारी कुलीन ब्राह्मण होना चाहिए। वेद अध्ययन करनेवाला वटु संभव होने तक वेद पढानेवाले व्यक्ति के

द्वारा उपनयन किया हुआ वटु होना चाहिए। न हो तो अन्य लोगों से उपनीत योग्य वटु को भी वेद पढाया जाता है। समुचित ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करके गुरु के अधीन में रहकर वेद का अध्ययन किया जाता है। अतः यह आवश्यक है कि उस वटु को पिता ने अथवा पितामह ने अथवा भाई ने अथवा पितृव्य ने अथवा बन्धु ने अथवा वटु स्वयं ने गुरु को समर्पित किया हो। उसके वाद गुरु द्वारा उस वटु को अपना पुत्र मानकर (अपने विद्यावंश का उत्तराधिकारी मानकर) समुचित रीति से वेद पढाना चाहिए। शिष्य का अन्नवस्त्र की और वास की व्यवस्था भी न्याय्यवृत्ति से ही होनी चाहिए। गृहस्थ गुरु के ही माध्यम से धनादि प्राप्त कर यह कार्य करना शास्त्रानुसारी काम है। वेदादि-शास्त्रव्यवस्थाअनुसार किए गए अध्ययन-अध्यापन से ही धर्म की रक्षा वा अभिवृद्धि होगी। गुरु तथा शिष्य का सम्बन्ध पिता-पुत्र के सम्बन्ध जैसा ही है। शास्त्रअनुसार यह शिक्षा स्वतन्त्र गुरु के अधीन में शासक के विशेष नियन्त्रण से बाहर रहनी चाहिए। इस प्रकार आवश्यक व्रत के साथ शास्त्रीय नियमों का पालन कराकर वेद का अध्यापन करके शिष्य को वेद-वेदाङ्ग का ज्ञान देना चाहिए, मनुष्यजीवन का ज्ञान देना चाहिए, सदाचार की आदत डालनी चाहिए, ठीक प्रकार से विचार करने की बोलने की और कार्य करने की प्रवृत्ति विकसित करने का काम भी करके शिष्य को आदर्श जीवनयात्रा चलाने के लिए योग्य बनाने का भी निर्देश शास्त्र में दिया गया है। शिष्य गुरुसे समावर्तन की अनुमति प्राप्त न होने तक पूर्णतया गुरु के अधीन में रहकर वेदाध्ययनादि में समर्पित होकर लगे यह निर्देश शास्त्र ने दिया है। यह धर्म-मोक्षविद्यारूप वेद पढने-पढाने की मुख्य वैदिक शास्त्रीय शिक्षाप्रणाली का संक्षिप्त परिचय है। इस विषय के सूक्ष्म नियम गृह्यसूत्रों में, धर्मसूत्रों में, स्मृतियों में, पुराणों में तथा इतिहास में भी प्रतिपादित हैं। यह शिक्षा मानव की धार्मिक-आध्यात्मिक आस्था से सम्बद्ध है। विना व्रत ज्ञान मात्र देने से शिष्य में सत्प्रवृत्ति विकसित न होकर शिक्षा विफल हो सकने के कारण ऋषि-मुनियों ने व्रत में जोड दिया है। अतः केवल विद्यास्नातक वा व्रतस्नातक नहोकर विद्या-व्रत-स्नातक होने का निर्देश है।

जिनका जीविकाव्यवस्था होगया हो, वैसे कुलीन सभी ब्राह्मणों को अनादि काल से गुरुशिष्यपरम्परा से तपस्यापूर्वक विवेक-विचारपूर्वक और यदृच्छालाभसन्तोष से बल प्राप्त करके पालना करके किये जा रहे वेद का अध्ययनअध्यापन की परम्परा को संरक्षित करना वेद के प्रति और ऋषिमुनियों के प्रति तथा अपने पुरखों के प्रति भी महती श्रद्धा का कार्य है। अपनी ऋषिपरम्परा के अनुरूप शिखासूत्रधारण, नित्य स्नान, शुद्धवस्त्रपरिधान, सन्ध्योपासन और गायत्रीजप करना तथा यथाशक्ति वेदाध्ययन करना और इन आचार में पुत्र-पौत्रों को भी दीक्षित करना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पुण्यकार्य है। इस कार्य में सनातन धर्म के अनुयायी अन्य वर्ण तथा जाति के लोग भी अपनी शक्ति के अनुसार सहायता करके पुण्यलाभ तथा आत्मकल्याण कर सकते हैं।

वैदिक शिक्षा का सार

वैदिक शिक्षा से शिक्षित स्नातकों में विकसित होना आवश्यक वैदिक शिक्षा का सारभूत प्रवृत्ति के विषय में तैत्तिरीयोपनिषद् के आचार्याऽनुशासन ने (१।११) स्पष्ट प्रतिपादन किया है। वहाँ का आचार्यानुशासन का मूल रूप इस प्रकार है–

वेदमनूच्याऽऽचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति– सत्यं वद, धर्मं चर, स्वाध्यायान् मा प्रमदः। आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः। सत्यान् न प्रमदितव्यम्। धर्मान् न प्रमदितव्यम्। कुशलान् न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वाध्याय-प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्॥ देव-पितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्। मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव, अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि, नो इतराणि। यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि॥ नो इतराणि। ये के चाऽस्मच् छ्रेयांसो ब्राह्मणाः, तेषां त्वयाऽऽसने न प्रश्वसितव्यम्। श्रद्धया देयम्, अश्रद्धयाऽदेयम्, श्रिया देयम्, ह्रिया देयम्, भिया देयम्, संविदा देयम्। अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात्॥ ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः, युक्ता आयुक्ताः, अलूक्षा धर्मकामाः स्युः, यथा ते तत्र वर्तेरन्, तथा तत्र वर्तेथाः। अथाऽभ्याख्यातेषु। ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः, युक्ता आयुक्ताः, अलूक्षा धर्मकामाः स्युः, यथा ते तेषु वर्तेरन्, तथा तेषु वर्तेथाः। एष आदेशः, एष उपदेशः, एषा वेदोपनिषत्, एतदनुशासनम्। एवमुपासितव्यम्, एवमु चैतदुपास्यम्॥

अर्थ– वेद की पढाई समाप्त करके आचार्य (गुरु) शिष्य को उपदेश देते हैं– सत्य बोलो, धर्म करो, स्वाध्याय से (अपनी शाखा के वेद के अध्ययन से) विचलित न होवो, आचार्य को (गुरु को) प्रिय धन उपहृत करके अपनी सन्ततिरूप तन्तु न तोडे (विधिवत् विवाह करके धर्म के दीप जलानेवाली सन्तति को जन्म दे), सत्य से विचलित नहीं होना चाहिए, धर्म से (वेदविधान से) विचलित नहीं होना चाहिए, कुशलकर्म से (अपने शरीर की रक्षा करनेवाले कर्म से) विचलित नहीं होना चाहिए, ऐश्वर्यप्राप्ति के लिए की जानेवाली न्याय्य चेष्टा से विचलित नहीं होनी चाहिए, विधिवत् स्वशाखावेद पढने और पढाने कर्म से विचलित नहीं होना चाहिए, होम-यजनादि देवकार्य से और तर्पण-श्राद्धादि पितृकार्य से विचलित नहीं होना चाहिए, माता को देवता जैसा ही माननेवाला होवे, पिता को देवता जैसे ही माननेवाला होवे, वेदवेदाङ्ग का अध्यापन करनेवाले गुरु को देवता को जैसा माननेवाला होवे, अतिथि को (विद्याधर्मकार्य में भ्रमण करनेवाले घर में एक रात ठहरने के लिए आएहुए व्यक्ति को) देवता को जैसा माननेवाला होवे, दोषरहित कर्मों का सेवन (पुनःपुनः आचरण) करना चाहिए, दोषयुक्त कर्म का सेवन नहीं करना चाहिए, हमारे (गुरु के) जो लोकशास्त्रप्रशंसित आचरण हैं, उन का तुम सेवन करो, हमारे लोकशास्त्रनिन्दित आचरणों का तुम सेवन मत करो, जो हमसे उत्तम ब्राह्मण हैं उनको आसन देकर उनका श्रमापनयन करना चाहिए, श्रद्धा से देना चाहिए, अश्रद्धा से नहीं देना चाहिए, अधिक सम्पत्ति होने से देना चाहिए, लोकलज्जा के कारण देना चाहिए, यमदण्डभय से देना चाहिए, मित्रादिकार्यज्ञान से देना चाहिए, यदि कदाचित् तुमको यह काम करना उचित है अथवा नहीं अथवा किस प्रकार करना चाहिए इस विषय में अथवा चरित्र के (सदाचरण के) विषय में सन्देह हुआ तो तुम्हारे देश में उस काल में विवेचनशील, शास्त्रोक्त कर्म में लगे हुए, लौकिक अन्य पुरुषों से प्रेरित नहीं हुए स्वतन्त्र अथवा शास्त्रवश्य,

अक्रूर हृदय वाले, शास्त्रधर्म रक्षा में लगे हुए जो ब्राह्मण होंगे, वे उस विषय में जिस प्रकार आचरण करते हैं वैसा ही आचरण करना चाहिए। अब अभ्याख्यात (किसी के द्वारा बडे दोष दिए गए अभिशस्त) व्यक्ति के विषय में कहा जाता है। वैसे व्यक्ति के सम्बन्ध में तुम्हारे देश में उस में विवेचनशील, शास्त्रोक्त कर्म में लगे हुए, स्वतन्त्र वा शास्त्रवश्य, अक्रूरहृदय वाले, शास्त्रधर्म की रक्षा को चाहनेवाले जो ब्राह्मण होंगे, वे वैसे व्यक्ति के प्रति जैसा वा जिस प्रकार आचरण करेंगे वैसा वा उस प्रकार ही आचरण करना चाहिए। यह वेद का आदेश (विधान) है, यह वेद का रहस्य अथवा वेदार्थ है, यह अनुशासन (वेदशास्त्रानुसारी बोधन) है, इस प्रकार आचरण करना चाहिए, इस प्रकार ही (वेदशास्त्र-विधानअनुसार ही) आचरण करना चाहिए।

गुरुकुलीय शिक्षा का पाठ्यक्रम

गुरुकुलीय पाठयक्रम में मूलतः वेद तथा कल्पसूत्र आते हैं। उसके बाद वेदाङ्ग तथा मीमांसाशास्त्र आते हैं। शास्त्र में बताया गया है– ***वेदं समाप्य स्नायात्।.. विधि–र्विधेयस्तर्कश्च वेदः। षडङ्गमेके। न कल्पमात्रे। कामं तु याज्ञिकस्य।***–पारस्करगृह्यसूत्र (२।६।१–८)। इस निर्देश के अनुसार अध्येतव्य तथा ज्ञातव्य मूल ग्रन्थ इस प्रकार हैं–

स्वशाखा-वेदमन्त्रसंहिता (अपनी कुलपरम्परागत वेदशाखा का मन्त्रभाग)
स्वशाखावेद का ब्राह्मणग्रन्थ (वेदशाखा का ब्राह्मणभाग)
स्वशाखा का श्रौतसूत्र
स्वशाखा का गृह्यसूत्र
स्वशाखा का धर्मसूत्र
स्वशाखा का परिशिष्टसूत्र
शिक्षाशास्त्र (प्रातिशाख्य तथा शिक्षा)
पाणिनीय व्याकरण (कात्यायनवार्त्तिक-पातञ्जलभाष्यसहित)
यास्कीय निरुक्त (दुर्गाचार्यव्याख्यासहित)
पिङ्गलच्छन्दःसूत्र
वेदाङ्गज्योतिष (आर्च अथवा याजुष)
जैमिनीय धर्ममीर्मासासूत्र
बादरायणीय ब्रह्ममीमांसासूत्र
कर्मकाण्डपद्धतिग्रन्थ॥

आचार्यशिवराजकौण्डिन्न्यायनस्थापित
स्वाद्ध्यायशाला, हात्तिगौँडा, काठमाण्डु, नेपाल।
सम्पर्क– दूर. ९७७-९८४१९६८२६२, ९८४१९६८२९२
svadhyaya@hotmail.com